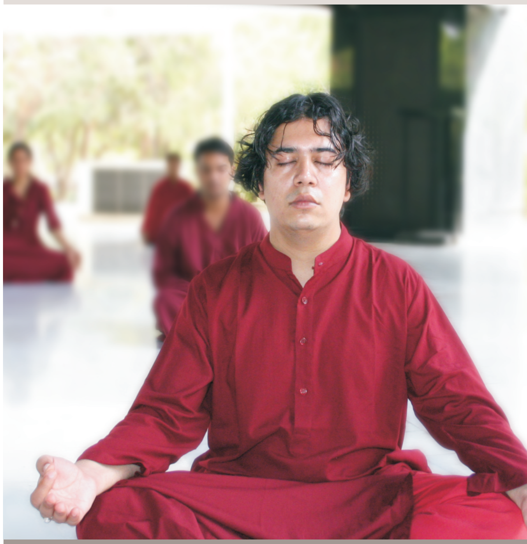

संयम : स्वयं में रमण

कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए संयम का अर्थ है, इस ऊर्जा का स्वयं में ही रमण करना, स्वयं में ही स्थिर हो जाना

संयम को जो उपलब्ध है; और भाव को, मन को जिसने हृदय में स्थिर कर लिया है। और ऐसी ऊर्जा होगी, तो भाव अपने आप हृदय में स्थिर हो जाता है। और प्राण जिसका मस्तिष्क में ठहर गया है

संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बन गया वर्तुल। खुद की ऊर्जा एक वर्तुल में घूमने लगी, एक सर्किल में। अब बाहर जाने का कोई उपाय न रहा। अब ऊर्जा कहीं भी डिसीपेट, कहीं भी बिखर नहीं सकती। अब ऊर्जा जितनी भी बढ़ती जाएगी, भीतर होती जाएगी। और जैसे-जैसे यह वर्तुल बनता है, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। और धीरे-धीरे जैसे हम मंदिर के ऊपर शिखर बनाते हैं—वे इसी के प्रतीक में बनाए गए शिखर हैं। छोटा होता जाता है मंदिर का बुर्ज, ऊपर जाकर स्वर्ण-शिखर लग जाता है। छोटा होता जाता है। जैसे-जैसे ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, वैसे-वैसे वर्तुल छोटा होता जाता है, सघन होता जाता है, कंडेंस्ड होता जाता है, और एक क्षण आता है, जब ऊर्जा स्वर्ण-शिखर बन जाती है। फिर ऊर्जा ऊपर की तरफ ऊर्ध्वगति को उपलब्ध होती है।

संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बनाया गया वर्तुल। असंयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का टूटा हुआ वर्तुल। उस टूटी जगह से ही लीकेज है। जहां वर्तुल टूटता है, वहीं से लीकेज है, वहीं से शक्ति बिखर जाती है और खो जाती है। जैसे शार्ट सर्किट हो जाए बिजली का, वहां से ऊर्जा बिखरने लगती है । और हमारी सारी इंद्रियों के द्वार से हम सिर्फ ऊर्जा को बिखेरते हैं,

खोते हैं।

कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए संयम का अर्थ है, इस ऊर्जा का स्वयं में ही रमण करना, स्वयं में ही स्थिर हो जाना।

तो इस सीक्रेट को, इस राज को, इस गुर को समझ लें। जब भी कोई विषय आकर्षित करे, तब ध्यान विषय पर न दें, तत्काल स्वयं पर दें और स्वयं की चेतना पर दें। उसी क्षण एक क्रांति मालूम पड़ेगी। भीतर कोई चीज जा रही थी बाहर; लौट पड़ी; टर्न अबाउट; बिना कुछ किए। अपने भीतर अनुभव होगा, कोई शक्ति बाहर जाती थी, वापस लौट गई। और वापस लौटकर जब वह स्वयं पर आती है, तो अपूर्व-अपूर्व साक्षात्कार होता है अपनी ही ऊर्जा का।

इस संयम को जो उपलब्ध है; और भाव को, मन को जिसने हृदय में स्थिर कर लिया है। और ऐसी ऊर्जा होगी, तो भाव अपने आप हृदय में स्थिर हो जाता है। और प्राण जिसका मस्तिष्क में ठहर गया है।

इन दो बातों को ठीक से समझ लें।

भाव का अर्थ है, फीलिंग, संवेदना। वह जो हमारे भीतर अनुभव करने की क्षमता है, वह। वह हृदय-क्षेत्र में स्थिर हो जाती है, जब कोई संयम को उपलब्ध होता है। क्यों ऐसा होता है?

हमारे शरीर के भीतर प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक अनुभव के लिए अलग-अलग केंद्र हैं, सेंटर्स हैं, चक्र हैं। और जब भी किसी चक्र की ऊर्जा किन्हीं दूसरे चक्रों में प्रवेश कर जाती है, तो हम करीब-करीब पागल की तरह जीते हैं। और अभी हमारी हालत ऐसी ही है।

जैसे एक आदमी मुंह से भोजन करे, समझ में आता है। दांतों से चबाए; गले से गटके; पेट से पचाए-समझ में आता है। लेकिन वह आदमी बैठकर केवल खाने का विचार करे, तो खाने का जो भी यंत्र है, वह बिलकुल उपयोग में नहीं आएगा; और मस्तिष्क जहां से खाना खाया नहीं जा सकता, वह खाने के काम में लग जाएगा। तो भोजन करना सेरिब्रल हो जाएगा, मस्तिष्कीय हो जाएगा। मस्तिष्क भोजन कर नहीं सकता, लेकिन भोजन करने के भ्रम में पड़ सकता है। और भ्रम अगर भारी हो जाए, तो व्यक्तित्व का सब विखंडित हो जाता है । और ऐसे भ्रम में हम जीते हैं।

कामवासना का केंद्र है। लेकिन लोग मस्तिष्क में कामवासना को धीरे-धीरे, सोच-सोचकर, कामवासना को केंद्र से हटाकर मस्तिष्क में प्रवेश कर देते हैं। तो मनोचिकित्सकों के पास ऐसे लोग आते हैं, जो कहते हैं, स्वप्न में तो मैं बहुत पोटेंट मालूम पड़ता हूं, बहुत वीर्यवान मालूम पड़ता हूं। जब विचार करता हूं, तो इतनी काम ऊर्जा मालूम होती है! लेकिन जब स्त्री के निकट पहुंचता हूं, तो एकदम इंपोटेंट, निर्वीर्य हो जाता हूं। वह रोज घटता है। उसके घटने का कारण है। क्योंकि उनकी पूरी की पूरी सेक्स सेंटर की जो संभावना थी, वह हटकर मस्तिष्क में केंद्रित हो गई है। तो जब वे सोचते हैं, तब वे बड़े शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। लेकिन जब शक्ति को प्रकट करने का अवसर हो, तब वे एकदम शक्तिहीन हो जाते हैं।

हमारे सारे चक्रों के जो-जो विभाजन हैं, वे सबके सब कनफ्यूज्ड हैं, एक-दूसरे में प्रवेश कर गए हैं। कोई किसी की सुनता नहीं मालूम पड़ता । और कोई चक्र किसी का काम करता है, कोई चक्र किसी का काम करता है। सब उधार हो गया है। तो हम मस्तिष्क से भावना तक करने पर उतर जाते हैं। मस्तिष्क भावना नहीं कर सकता है। हृदय विचार नहीं कर सकता है।

जो जिस चक्र का काम है, अगर उस पर ही पहुंच जाए, तो व्यक्तित्व एकदम संतुलित हो जाता है। और जब ऊर्जा संयम को उपलब्ध होती है, तो प्रत्येक चक्र सिर्फ अपने ही काम को करता है।

अभी पश्चिम में एक बहुत बड़ा साधक, महायोगी था, जार्ज गुरजिएफ। तो वह कहता था, अगर तुम इतना ही कर लो कि तुम्हारा प्रत्येक चक्र शुद्ध हो जाए, कि कामवासना का चक्र केवल कामवासना का ही काम करे, तो भी तुम महाजीवन को उपलब्ध हो जाओगे ।

लेकिन हमारे भीतर सब कनफ्यूज्ड है। हमारी हालत ऐसी है, जैसी किसी एक ऐसी मिलिटरी की टुकड़ी की, जिसमें पहरेदार सेनापति बनकर बैठ गया हो; जिसमें सेनापति पहरेदार के पैरों के पास बैठा हो; जिसमें जिनको आज्ञा देनी चाहिए, वे आज्ञा ले रहे हों; जिनको आज्ञा लेनी चाहिए, वे आज्ञा दे रहे हों; और किसी को पता न हो कि कौन-कौन है। सब विक्षिप्त हो जाए। ऐसी हमारे चित्त की, चेतना की, हमारे व्यक्तित्व की दशा है।

कृष्ण कहते हैं, जब कोई संयम को उपलब्ध हो और भाव हृदय-देश में स्थित हो जाए, मन हृदय-देश में ठहर जाए और प्राण मस्तक में...।

ये दों बाते हैं। भाव, अनुभव करने की जो प्रतीति है; क्या कभी आपने खयाल किया है कि आप अनुभव कहां से करते हैं? आकाश में पूर्णिमा का चांद है, आप उसके नीचे खड़े हैं। आंख उठाकर आकाश को देखते हैं, तो क्या आपका मस्तिष्क कहता है कि बहुत सुंदर या आपके हृदय के पास कोई स्फुरणा होती है? यह आपको जांचना पड़े।

अक्सर हम शब्दों से बताते नहीं, छिपाते हैं। अक्सर जब प्रेम चुक जाता है, तब हम कहते है कि मैं बहुत प्रेम करता हूं। यह केवल सब्स्टीट्यूट है। जब प्रेम होता है, तो उसे कहने की जरूरत नहीं होती। आंखें कह देती हैं। पलकें कह देती हैं। चेहरे का भाव कह देता है। हाथ का इशारा कह देता है

और आप हमेशा पाएंगे, सौ में निन्यानबे मौके पर, कि यह मस्तिष्क ही है, जो कह रहा है, बहुत सुंदर। और यह भी इसलिए नहीं कह रहा है कि इसे बहुत सुंदर का अनुभव हो रहा है। यह सिर्फ इसलिए कह रहा है कि इसने बार-बार पूर्णिमा के दिन लोगों को कहते सुना है कि बहुत सुंदर। किताबों में पढ़ा है, कविताओं में पढ़ा है, फिल्मों में देखा है, नाटकों में सुना है—बहुत सुंदर। यह भी दोहरा रहा है। यह ग्रामोफोन रिकॉर्ड की तरह इसके मस्तिष्क में भर गया है। इसको दोहरा रहा है। अगर इसे अनुभव हो, तो मस्तिष्क में नहीं होगा, हृदय में होगा। और जब अनुभव होगा, तो शायद आदमी शब्द भी न देना चाहे।

सुना है मैंने, लाओत्से के साथ एक मित्र रोज घूमने जाता था सुबह। मित्र का एक अतिथि भी साथ आ गया और दोनों लाओत्से के साथ घूमने गए। मित्र तो जानता है लाओत्से को कि वह चुप ही रहना पसंद करता है, वर्षों में कभी बोलता है। लेकिन परदेशी अतिथि को कुछ पता नहीं है। दोनों को चुप देखकर वह भी काफी चुप रहा। फिर एक भूल हो गई।

सुबह जब सूरज निकला और वृक्षों के ऊपर उठने लगा, और पक्षी गीत गाने लगे, और फूल खिल गए, और सुगंध भर गई उस वन-पथ पर, तो उसने कहा, कितनी सुंदर सुबह है! किसी ने उत्तर न दिया। लाओत्से ने जरूर गौर से उसे देखा, फिर चल पड़ा। मित्र थोड़ा घबराया; उसने जरा संकोच से अपने अतिथि की तरफ देखा; वह भी चल पड़ा। वह अतिथि थोड़ा हैरान हुआ कि किसी ने इतना भी न कहा कि हां, ठीक कहते हो, बड़ी सुंदर सुबह है!

लौटकर लाओत्से ने अपने मित्र को कहा, कल से इस आदमी को मत लाना; बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। दो घंटे में उसने इतना ही कहा था, बड़ी सुंदर सुबह है। उसके मित्र ने, लाओत्से के मित्र ने कहा, ज्यादा बातूनी तो नहीं है ऐसा। एक ही बात कही है।

लाओत्से ने कहा, लेकिन अगर उसे सुबह सुंदर लगी थी , तो कहने का खयाल भी न आता। अगर सुबह सुंदर लगी थी तो वह लीन हो गया होता। वह भूल ही गया होता कि सुबह है। वह खो गया होता। उसे कुछ लगा-वगा नहीं है। सिर्फ आदत, आदतन, सुबह सुंदर है! और फिर हमको भी तो पता था, हम भी वहीं मौजूद थे। उसने कहकर सिर्फ सौंदर्य को बाधा पहुंचाई। उस सन्नाटे में, जहां पक्षियों के गीत थे, और जहां सूरज की किरणें थीं, और सुबह की सुगंधित हवाएं थीं, उसकी यह बात बड़ी कुरूप थी और बेमानी थी, और सन्नाटे को तोड़ती थी, उस मौन को खंडित करती थी, कि सुबह बहुत सुंदर है। यह वक्तव्य बड़ा असुंदर था, अगली स्टेटमेंट था।

निश्चित ही, जब आपको कोई चीज सुंदर मालूम पड़ेगी, बुद्धि ठहर जाएगी, हृदय अनुभव करेगा। हो सकता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाए। हो सकता है, रक्तचाप तेजी से हो जाए। हो सकता है, रोएं खड़े हो जाएं। लेकिन यह प्रतीति हृदय की होगी; यह बुद्धि की नहीं होगी।

लेकिन हमने हृदय से कुछ भी अनुभव करना बंद कर दिया है। हम सब बुद्धि से ही अनुभव किए जा रहे हैं। और बुद्धि अनुभव करने में असमर्थ है। वह उसका काम नहीं है।

संयमी व्यक्ति का भाव हृदय में स्थापित हो जाता है। कैसे होगा स्थापित ? या तो संयम को उपलब्ध हों, तो हो जाए या अगर भाव को भी हृदय में स्थापित कर लें, तो भी संयम का मार्ग सुगम हो जाएगा

संयमी व्यक्ति का भाव हृदय में स्थापित हो जाता है। कैसे होगा स्थापित? या तो संयम को उपलब्ध हों, तो हो जाए या अगर भाव को भी हृदय में स्थापित कर लें, तो भी संयम का मार्ग सुगम हो जाएगा।

तो जब भी अनुभव करें, खयाल रखकर करें कि हृदय से अनुभव कर रहे हैं। जब किसी से कहें कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। तो यह पहले मत कहें; पहले हृदय के पास किसी सनसनी को दौड़ जाने दें, कोई लहर। और जब लहर हृदय को पकड़ ले, तभी अगर जरूरी लगे, तो कहें। और अगर दूसरा बिना कहे समझ सकता हो, तो चुप ही रहें; उसे समझने का मौका दें।

अक्सर हम शब्दों से बताते नहीं, छिपाते हैं। अक्सर जब प्रेम चुक जाता है, तब हम कहते है कि मैं बहुत प्रेम करता हूं। यह केवल सब्स्टीट्यूट है। जब प्रेम होता है, तो उसे कहने की जरूरत नहीं होती। आंखें कह देती हैं। पलकें कह देती हैं।

चेहरे का भाव कह देता है। हाथ का इशारा कह देता है। उठना-बैठना कह देता है। प्रेमी के पास आकर बैठना कह देता है कि मैं प्रेम करता हूं।

लेकिन जब यह सब चुक जाता है, तब सिर्फ शब्द रह जाते हैं। कोरे और खाली, चले हुए कारतूस जैसे, जिनके भीतर कोई बारूद-वारूद नहीं है। तब हम कहते हैं, मै बहुत प्रेम करता हूं! वह सिर्फ समझाना है। सिर्फ समझाना है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही है कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, तब भी तुम मुल्ला मुझे प्रेम करोगे या नहीं? मुल्ला ने कहा, बिलकुल करूंगा। जरूर करूंगा। तेरे पैरों की धूल सिर पर रखूंगा। फिर एकदम से कहा कि तू अपनी मां जैसी तो नहीं हो जाएगी? इतना ही खयाल रखना, अपनी मां जैसी मत हो जाना!

यह जब उसकी पत्नी पूछ रही है, तब वह बहुत बीमार पड़ी थी। वह सिर्फ खोज रही है। फिर वह पूछती है उससे कि मुल्ला, अगर मैं मर जाऊं, तो सच-सच कहो, दूसरा विवाह तो नहीं करोगे। मुल्ला ने कहा, ऐसी बातें नहीं पूछा करते। तेरी तबीयत ठीक नहीं है। ऐसी बातें नहीं पूछा करते। पर पत्नी पीछे पड़ गई, तो मुल्ला ने कहा, बड़ी मुश्किल है। अगर मै कहूं कि करूंगा, तो कहना जंचेगा नहीं; और अगर कहूं कि नहीं करूंगा, तो वह सच न होगा।

कहते हैं कि मुल्ला ने किसी स्त्री को प्रेम का निवेदन किया था। और उसकी उस प्रेयसी ने पूछा था कि मुल्ला, तुम ऐसे-ऐसे पत्र लिखते हो कि मैं मर जाऊंगा अगर तू मुझे न मिली; क्या सच ही तुम मर जाओगे अगर मैं तुम्हें न मिली? मुल्ला ने कहा, दिस हैज बीन माई यूजुअल हैबिट। यह तो मैं सदा करता रहा हूं। यह सदा की मेरी आदत है। जब भी किसी से मैंने प्रेम किया और अगर वह मुझे न मिला, तो मैं फौरन मर गया।

उस स्त्री ने प्रेम नहीं किया मुल्ला से, विवाह भी नहीं किया। और कहते हैं, मुल्ला ने अपना वचन निभाया, यद्यपि सत्तर साल बाद! मर गया सत्तर साल बाद! लिख गया अपनी वसीयत में कि कोई यह न समझे कि मैं झूठा हूं। मैंने वचन दिया था अपनी प्रेयसी को कि अगर तूने मुझसे विवाह न किया, तो मैं मर जाऊंगा, और अब मैं मर रहा हूं। सत्तर साल बाद!

हमारा सारा प्रेम, प्रेम के दावे, मर जाने के वचन, आश्वासन, कहीं भी हृदय से आते नहीं मालूम पड़ते। सिर्फ बुद्धि का हिसाब-किताब है। और जितना कम होता है हृदय, बुद्धि से हमें उतना ज्यादा सब्स्टीट्यूट, परिपूरण करना पड़ता है। तो जितना कम प्रेमी, उतना ज्यादा गुहार मचाए रखता है कि मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं। सच में जो प्रेमी है, चुप होना भी काफी है। और अगर चुप्पी न कह सके प्रेम को तो शब्द कभी भी न कह पाएंगे। भाव जब होता है, तो रोआं-रोआं कहता है; उपस्थिति कहती है।

तो जब आप किसी के प्रेम में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। जब आप प्रार्थना में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। जब आप सौंदर्य को देख रहे हों-सूरज निकला है, फूल खिल गया है; कोई आंखें हैं, सुंदर हैं—तब भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। भाव इतना ही कहेगा, आंखें सुंदर है। बुद्धि कहेगी, इन आंखों को घर में कैद करने का उपाय है या नहीं! भाव इतना ही कहेगा, प्यारा है फूल; अनुभव करेगा। बुद्धि कहेगी, तोड़ो। क्योंकि बुद्धि जहां भी प्यारा कुछ लगे, उसको तोड़ना चाहती है। बुद्धि बहुत हिंसात्मक है।

अगर सच में ही किसी ने फूल को प्रेम किया है, तो मुश्किल है सोच पाना कि उसे तोड़ेगा कैसे? लेकिन आप जब भी फूल को प्रेम करते हैं, तो जो पहला काम आप करते हैं, वह फूल को तोड़ने का है। अजीब प्रेम है! अगर यही प्रेम है, तो हत्या करना किसे कहते हैं?

जब भी फूल प्यारा लगता है, तो पहला काम कि तोड़ो झटके से; उसके जीवन को नष्ट करो। उसका जो जीवंत रूप था, हटाओ। और एक मुर्दे फूल को खीसे में लगाकर घूमो। शायद फूल से आपको बिलकुल प्रेम नहीं है। शायद फूल को भी आप अपने अहंकार की शोभा और आभूषण बनाना चाहते हैं। अगर कोई स्त्री मुझे सुंदर लगे, तो कैसे जल्दी इसे अपने घर में कैद करूं, यह बुद्धि का खयाल है। बुद्धि इसी भाषा में सोचती है। भाव नहीं सोचता। भाव को अगर कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में डालने का कोई सवाल ही नहीं है। अगर भाव को कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में हो भी, तो उसे मुक्त कर देने की कामना पैदा होती है। अगर किसी को फूल सुंदर लगा है और जमीन पर पड़ा है, तो वह उसे उठाकर कहीं पानी में रख देना चाहेगा कि थोड़ी देर और ज्यादा जिंदा रह जाए। भाव की प्रक्रिया अलग है। भाव आपको कठिनाई में नहीं डालता। लेकिन बुद्धि आपके ऊपर इतनी जोर से कसकर बैठी है कि भाव बोल भी नहीं पाता कि बुद्धि अपने वक्तव्य देने शुरू कर देती है। और भाव कह भी नहीं पाता कि क्या अनुभव हुआ, बुद्धि योजना बनाने लगती है कि क्या करना चाहिए।

नहीं; सौंदर्य का अनुभव बुरा नहीं है, लेकिन सौंदर्य को कैद करने की जो बुद्धि है, वह पाप है। और अगर हम इस पृथ्वी पर किसी दिन भाव से जीना शुरू करें, और किसी के सौंदर्य को अगर आप सड़क पर खड़े होकर देखने

लगें, तो वह बुरा अनुभव नहीं करेगा; नहीं करना चाहिए। क्योंकि परमात्मा की इस देन को अगर कोई आनंद से देख रहा है, तो हर्ज कहीं भी, कुछ भी नहीं है। लेकिन अभी वह बुरा अनुभव करता है, क्योंकि सबको पता है कि देखना केवल प्रारंभ है, केवल शुरूआत है एक लंबे नर्क की। इसलिए देखने के नियम हैं। अगर मैं सरसरी नजर से आपको देखूं, तो कोई एतराज नहीं। अगर जरा समय से ज्यादा रुक जाऊं, तो खतरा शुरू हो जाता है। क्योंकि उतनी देर रुकने का मतलब है, नजर उतनी देर रुकी, उसका मतलब है कि अब मैं किसी कारागृह में डालने की योजना बना रहा हूं, या किसी वासना की तृप्ति पर उतर आया हूं। इसलिए हमारी आंख को भी हमें हिसाब में रखना पड़ता है। किसको कितनी

देर देखो, हिसाब रखना पड़ता है। अगर भाव कह भी रहा हो कि दो क्षण रुक जाओ, शायद ऐसा सौंदर्य फिर दिखाई न पड़े, शायद परमात्मा की ऐसी कुशलता फिर दिखाई न पड़े, तो भी बुद्धि कहेगी कि इतनी ज्यादा देर रुके तो खतरा हो सकता है।

दूसरा भी सचेत हो जाता है! दूसरा भी सचेत हो जाता है।

किसी को घूरकर देखिए। घूरकर देखना ही बुरी बात है। घूरकर देखने का मतलब ही बुरा हो जाता है। हम तो कहते ही उस आदमी को लुच्चा हैं, जो घूरकर देखता है। लुच्चा का मतलब सिर्फ होता है, घूरकर देखने वाला। और कुछ मतलब नहीं होता इस शब्द का। लुच्चा, आंख से बना शब्द है, लोचन से। जो आंख गड़ाकर देखता है, वह लुच्चा। वैसे आलोचक का भी यही मतलब होता है। वह भी जरा आंख गड़ाकर चीजों को देखता है, कि आप क्या कह रहे हैं, वह जरा आंख गड़ाकर देखता है—क्रिटिक, आलोचक। आलोचक और लुच्चे में बहुत फर्क नहीं है। लुच्चा जरा गलत जगह लगा देता है, आलोचक जरा ठीक जगह लगा देता है।

आंख को गड़ाकर देखना, बुद्धि आ गई। दूसरी तरफ भी आ गई, इस तरफ भी आ गई; और अड़चन शुरू हो गई। भाव! एक बच्चा अगर किसी सुंदर स्त्री को खड़ा होकर देखता रहे, तो उसे कुछ बैचेनी न होगी। क्योंकि अभी सिर्फ भाव है। भाव इनोसेंट है; भाव बहुत निर्दोष है, पवित्र है। लेकिन यही बच्चा कल जवान हो जाएगा। और यही घूरकर देखेगा, तो कठिन हो जाएगा। क्यों? अब सिर्फ भाव न रहा। अब बुद्धि योजना बनाने लगेगी और वासना के उपयोग में आने लगेगी।

हैरान होंगे जानकर आप, भाव वासना का जन्मदाता नहीं है। अगर शुद्ध भाव में कोई ठहर सके, तो वासना तिरोहित हो जाती है। वासना का जन्म होता है बुद्धि और वृत्ति के सहयोग से। भाव और वृत्ति के बीच कभी कोई सहयोग नहीं होता है। और बुद्धि और वृत्ति के बीच सहयोग हो जाता है। और बुद्धि रास्ता बताती है कि यह है मार्ग; जाओ बाहर। खोजो। पाने का उपाय करो। पा लोगे। ये-ये विधियां हैं। ये-ये रीतियां है। इस तरह चलोगे, तो सफल हो जाओगे।

और जब भी कोई व्यक्ति बुद्धि की मानकर चलने लगता है, धीरे-धीरे भाव का केंद्र सो जाता है। और जिसके भाव का केंद्र सो गया, वह चलती-फिरती लाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह एक कंप्यूटर हो सकता है कि गणित का हिसाब लगा देता हो, दफ्तर का काम कर देता हो, दुकान चला लेता हो। इंजीनियर हो, कि डाक्टर हो, कि वकील हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह सिर्फ एक कंप्यूटर है। यह जो उसकी खोपड़ी कर रही है, यह तो अब कंप्यूटर बहुत बेहतर ढंग से कर देगा।

कंप्यूटर और आदमी में एक ही फर्क है कि कंप्यूटर अभी तक भाव नहीं कर सकता; बुद्धि का तो सब काम कर देता है। अगर आप भी सिर्फ बुद्धि रह गए हैं, तो आप बहुत जल्दी रिप्लेस कर दिए जाएंगे; आप बहुत जल्दी गैर-जरूरी हो जाएंगे। और किसी कबाड़खाने में आपको उठाकर रख दिया जाएगा। क्योंकि आप महंगे भी हैं, खर्चीले भी हैं, नान-इकोनामिकल भी हैं। कंप्यूटर बेहतर है। वह भोजन करता नहीं या बहुत कम भोजन करता है। थोड़ी-सी बिजली लेता है। टूटता-फूटता नहीं। भूल-चूक कभी नहीं करता। और हजार आदमी जिसके काम को कर सकें लाखों घंटों में, वह क्षण में कर देता है। तो आदमी तो आउट आफ डेट है। कंप्यूटर उसकी जगह आ जाएगा।

ठीक से जीना तो एक कला है ही, लेकिन ठीक से मरना भी एक बड़ी कला है। हालांकि जो ठीक से जीते हैं, वहीं ठीक से मर पाते हैं। इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि ठीक से जीना, ठीक से मरने की कला का प्राथमिक चरण है। शिखर और सेतु तो ठीक से मरना है

आदमी के बचने की एक ही संभावना है कि आदमी अगर अपने भाव के केंद्र को पुनर्जाग्रत कर ले, तो ही कंप्यूटर से जीत सकता है। अन्यथा जीतने का अब कोई उपाय नहीं है।

और ध्यान रहे, आदमी आदमी से लड़ता रहा, यह एक बात थी। अब पहली दफा आदमी मशीन से लड़ेगा। और मशीन से लड़कर आदमी जीतेगा नहीं, क्योंकि मशीन सब कुछ आपसे ज्यादा कुशलता से कर सकती है। सिर्फ एक काम मशीन नहीं कर सकती, वह भाव है।

लेकिन भाव हमारे पास नहीं है। भाव का हमें पता ही नहीं। हृदय में हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि वह जो धड़कन होती रहती है। वह भी हम तभी जानते हैं, जब कोई बीमारी, कोई अड़चन आ जाती है। लेकिन वह धड़कन तो सिर्फ फुफ्फुस है। वह धड़कन तो सिर्फ पंपिंग स्टेशन की वजह से है। श्वास को, खून को पंप कर रही है, इसलिए धड़कन है। वह हृदय नहीं है। उस धड़कन के पास एक और धड़कन भी है, जिसको नापा नहीं जा सकता है। वह भाव की धड़कन है।

लेकिन भाव को फैलाएं, मौका दें, अवसर दें, और धीरे-धीरे भाव को केंद्रित करें, तो संयम में सहयोगी बन जाता है। या संयम हो, तो वह भाव में सहयोगी बन जाता है। साधना के जगत में सब अन्योन्याश्रित हैं, इंटरडिपेंडेंट हैं। कहीं से भी शुरू करें, दूसरी चीज सहयोग हो जाती है।

'और प्राण को मस्तक में...।'

प्राण से अर्थ है, जिसे बर्गसन ने एलान वाइटल कहा है, जीवन शक्ति कहा है, भारत उसे सदा से प्राण कहता रहा है। प्राण है हमारे भीतर वह ऊर्जा, जिसके सहारे हम जीते हैं। और जब यह शरीर छूटता है तो शरीर से कुछ भी नहीं जाता है, सिर्फ प्राण चला जाता है। लेकिन वह

प्राण अगर मस्तक में स्थापित होकर जाए, तो परम गति को उपलब्ध होता है, अगर मस्तक में स्थापित न हो पाए, तो जिस केंद्र पर स्थपित होता है, उसी गति को उपलब्ध होता है।

परम गति, कृष्ण किसे कहते हैं, वह भी समझ लें। परम गति उसे ही कहा है, जिसके आगे फिर कोई गति नहीं। परम गति उसे ही कहा है, जो अंतिम गति है, दि अल्टिमेट है, जिसके आगे कुछ भी नहीं है।

इसलिए मोक्ष ही परम गति है, या ब्रह्म-उपलब्धि ही परम गति है, या निर्वाण ही परम गति है। बाकी सब गतियां परम नहीं हैं। क्योंकि उनके बाद और गतियां होंगी, और गतियां होंगी, और यात्राएं, और यात्राएं परम। यात्रा तो वही है, जिसके आगे फिर कोई मंजिल शेष नहीं रह जाती। अगर प्राण इकट्ठा हो जाए भृकुटी-मध्य में, तो फिर कोई दूसरी गति में मनुष्य को नहीं जाना पड़ता। और जिस जगह केंद्रित होता है, उस जगह से पता चलता है कि किस गति में आदमी जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति का प्राण शरीर के अलग-अलग बिंदुओं से निकलता है। सभी व्यक्ति एक ही बिंदु से नहीं मरते। जिन व्यक्तियों का प्राण भ्रू-मध्य में इकट्ठा हो जाता है, उनका प्राण सहस्रार से निकलता है। आज्ञा-चक्र में जिनका प्राण स्थापित हो जाता है, तो जैसे ही आज्ञा-चक्र में प्राण का प्रवेश होता है, यह जो अंतिम चक्र है हमारा सहस्रार, दि सेवेंथ, उसे तोड़कर निकल जाता है। इसलिए परम ज्ञानियों की अक्सर खोपड़ी भी टूट जाती है उस जगह से। जरूरी नहीं है कि टूटे ही; अक्सर टूट जाती है।

लेकिन हमने इसलिए नियम बना रखा है कि जब किसी को, मुर्दे को हम जलाने जाते हैं, तो उसकी कपाल-क्रिया कर देते हैं, खोपड़ी फोड़ देते हैं, वह खुद तो नहीं फोड़ पाए, काफी देर पहले मर गए। अब हम फोड़ रहे हैं! मुर्दे की खोपड़ी फोड़ रहे हैं। उसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन सूचक है।

इस मुल्क ने जाने हैं ऐसे लोग, जिनकी मरते वक्त अपने आप खोपड़ी टूट जाती है। वह सूचना है कि वे परम गति को उपलब्ध हो गए। अब हम दीन-हीन, गरीब लोग हैं। मैं मर जाऊं और खोपड़ी अपने से न टूटे, तो एक बेटे को अपने पीछे छोड़ जाता हूं कि तू मेरी खोपड़ी तोड़ देना मरने के बाद! यह वैसे ही है, जैसे मरने के बाद कोई दवा दे, इंजेक्शन लगाए। इस खोपड़ी तोड़ने का कोई भी अर्थ नहीं है। यह बड़ी दीनता की सूचक है। यह खबर दे रही है कि जो होना था, वह नहीं हुआ। अब वे मुर्दे के साथ एक खेल कर रहे हैं। लेकिन जिन्होंने यह रिवाज जारी किया, उन्हें पता था कि कभी-कभी कोई व्यक्ति उस छिद्र से भी प्राण को छोड़ता है। उस छिद्र से तभी प्राण छूटता है, जब प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होता है, अन्यथा नहीं छूटता।

यही प्राण हमारी जीवन ऊर्जा है, लाइफ एनर्जी है। हम इसी के द्वारा गति करते हैं। अगर भ्रू-मध्य तक वह नहीं पहुंचा, तो फिर कहीं से भी छूटे, हमें दूसरे जन्म को ग्रहण करना पड़ेगा। और जितने नीचे केंद्र से छूटेगा, उतनी नीची गति में हमारी यात्रा होती है। उतने ही निम्न मन और निम्न प्राण को और निम्न देह को लेकर हम फिर जीवन को चलाते हैं।

अक्सर अधिक लोगों का प्राण काम-केंद्र से ही छूटता है। क्योंकि वही हमारा केंद्र है सर्वाधिक सक्रिय। और जब काम-केंद्र से हमारा प्राण छूटता है, तो हम कामवासना से भरे हुए फिर नए जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। कामवासना समस्त वासनाओं का आधार है, मूल है। फिर सब वासनाएं उसके साथ पुनः पैदा हो जाती हैं। और एक बार नहीं अनेक बार मरकर भी हम वहीं भूल करते हैं कि हम ठीक से नहीं मरते।

ठीक से मरना एक कला है। ठीक से जीना तो एक कला है ही, लेकिन ठीक से मरना भी एक बड़ी कला है। हालांकि जो ठीक से जीते हैं, वहीं ठीक से मर पाते हैं। इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि ठीक से जीना, ठीक से मरने की कला का प्राथमिक चरण है। शिखर और सेतु तो ठीक से मरना है! हाउ टु डाइ राइटली ? सम्यक मृत्यु कैसे फलित हो?

कृष्ण उसी सम्यक मृत्यु की चर्चा कर रहे हैं। वे कहते हैं, प्राण स्थिर हो जाए भ्रू-मध्य में।

और ध्यान की कोई भी विधि का उपयोग करें, प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होने लगता है। कोई भी ध्यान की प्रक्रिया करें—भजन में लीन हों, कि प्रार्थना में, कि नमाज में, कि मौन बैठें, कि नाम स्मरण करें—कोई भी उपाय करें, जब भी ध्यान फलित होता है, तो प्राण भ्रू-मध्य की तरफ दौड़ने लगते हैं। वही ध्यान की सफलता का सूचक है, लक्षण है, कि अब भ्रू-मध्य की तरफ ध्यान दौड़ना शुरू हो गया, तो ध्यान सफल हो रहा है, स्वीकृत हो रहा है : प्रभु के मार्ग पर स्वीकृत होता जा रहा है।

—ओशो

गीता दर्शन, भाग—4

प्रवचन नं. 05 से संकलित

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)

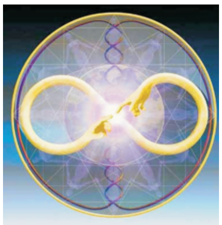

आदमी आदमी से लड़ता रहा, यह एक बात थी। अब पहली दफा आदमी मशीन से लड़ेगा। और मशीन से लड़कर आदमी जीतेगा नहीं, क्योंकि मशीन सब कुछ आपसे ज्यादा कुशलता से कर सकती है। सिर्फ एक काम मशीन नहीं कर सकती, वह भाव है